आपने लिखा

हालांकि अंक 34 का मुखपृष्ठ आकर्षक नहीं था फिर भी इस चित्र से संबंधित लेख 'सूरज पर धब्बे...' अपने आप में कुछ नया ज्ञान लिए हुए था। लेख पढ़कर ही पता चला कि किस तरह ब्रिटिश हुकूमत ने खुद को अकाल के दायित्व से बचा लिया।

कुछ समाचार पत्रों में मैंने पढ़ा कि सूर्य पर सौर्य तूफान आया हुआ है। इसके क्या प्रभाव होंगे मालूम नहीं।

'पक्षियों के विकास' संबंधी लेख पढ़कर मन में एक जिज्ञासा पैदा हुई कि अगर डायनोसौर जैसे विशालकाय जीव दौड़ते-दौड़ते पक्षियों में तब्दील हो गए; हालांकि यह विकास काफी धीमे-धीमे चला; तो क्या भविष्य में इंसान भी धीरे-धीरे अपना रूप-आकार बदल लेगा? (चाहे इसमें काफी समय लगे।)

पुस्तक समीक्षा में जिन तीन कहानियों की समीक्षाएं की गई थीं वे सोचने पर मजबूर करती हैं कि स्कूली पाठ्यक्रमों में जो कहानियां दी होती हैं वे कितनी बाल मनोविज्ञान के अनुरूप होने के साथ-साथ, कुछ नवीनता और कौतुहल लिए होती हैं? या उन कहानियों का निष्कर्ष छात्र थोड़ा-सा पढ़कर ही ज्ञात कर लेते हैं। मेरे विचार से हर बार शिक्षा देने के प्रयास से कहानी नहीं लिखी जानी चाहिए।

'80 दिन में दुनिया की सैर' में समझ में नहीं आया कि कहानीकार ने अपने एक पात्र का नाम अचानक 'पासपार्टआउट' क्यों कर दिया।

'बंगाल में इस्लाम' में रिचर्ड ईटन का यह लेख तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक परिवर्तनों की कशमकश भरी कहानी प्रस्तुत करता है।

पिछले कुछ अंकों से आपने अनारको को बिल्कुल भुला दिया है, कृपया उसे पुनः अवतरित करें। अगर संभव हो तो वर्ष में एक बार संदर्भ का कोई अतिरिक्त या विशेषांक प्रकाशित कीजिए।

रमेश जांगिड़
भिरानी, राजस्थान

मैं विज्ञान की और भी बहुत-सी पत्रिकाएं पढ़ता हूं। संदर्भ का अक्टूबर-नवंबर 2000 का अंक आपके पत्र सहित प्राप्त हुआ।

इस अंक में दिया गया लेख 'कांटों का घरौंदा' पढ़ा। यहां भी इस प्रकार का कीट पाया जाता है। यह इस प्रकार का घरौंदा चीड़ के पत्तों के डंठल व अन्य छोटी-छोटी लकड़ियों के टुकड़ों से भी बनाता है।

नंदा बल्लभ पंत
ग्राम सिल्ली, ज़िला अलमोड़ा, उत्तराखंड

आज अचानक रात में संदर्भ का 33 वां अंक (अगस्त-सितंबर 2000) हाथ लगा। वैसे तो मैं इसका नियमित

पाठक हूं और आज तक मैंने संदर्भ में लिखी कहानी या लेख पर कोई कटाक्ष नहीं किया। इस अंक में वंदना जी द्वारा 'अनारको और चोर अंकल' कहानी के बारे में कही गई साम्यवाद वाली बात कुछ हजम नहीं हुई। उनका कहना है, "कौन-सी विचारधारा अपना खाना पाने के लिए चोरी जैसा घृणित तरीका सुझाती है?" यदि वंदना जी इस बात को चोरी से हटाकर अपनी चीज़ पाने की लालसा पढ़तीं तो उन्हें कहानी का मतलब जान पड़ता। यह बात मेरी समझ से बाहर है कि जो कहानी एक सात-आठ साल की बच्ची पर है, जो सिर्फ एक कहानी है, उसमें साम्यवाद की बात लाना कहां तक उचित है। यदि उन्हें कहानी में साम्यवाद की बू आती है तो 'नारंगी का छिलका' (अंक 17, मई-जून 1997) जो कि मेरी प्रिय कहानी है उसके बारे में उनके विचार क्या होंगे?

संपादक जी से निवेदन है कि ऐसे लेख छापने से पहले यह जान लें कि लेखक की रुचि अपनी विचारधारा को शौहरत दिलवाना मात्र तो नहीं है?

बलदेव जुमनानी
होशंगाबाद

इसमें कोई शक नहीं कि यह पत्रिका उत्कृष्ट और स्तरीय पत्रिका है। टी. वी. वेंकटेश्वरन और कमलेशचंद्र जोशी के लेख काफी रोचक लगे। विज्ञान कथा से उस समय के भारत के बारे में जानकारी मिलती है। 'वे दौड़ते-दौड़ते उड़ने लगे' लेख पढ़कर लगा कि पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनना ही पड़ेगा।

देवांशु वत्स,
सुपौल, बिहार

संदर्भ में मुझे जो विशेष रुचिकर लगा, वह था ज्यूल्स वर्न की विज्ञान कथा का हिन्दी रुपांतरण। निश्चित रुप से विज्ञान कथाओं के प्रचार-प्रसार का आपका यह प्रयास सराहनीय है। विशेषकर अंग्रेज़ी साहित्य को हिन्दी पाठकों के लिए उपलब्ध करवा पाना एक जटिल काम है।

हिन्दी पाठक तथा लेखक वर्ग काफी जटिल किस्म का है। काफी लेखक विज्ञान कथाओं में फैंटेसी को एक ढाल की तरह प्रयोग करते हैं तथा अपनी इच्छित रचनाएं पाठकों पर थोपते हैं जिससे हिन्दी में विज्ञान कथाओं को समुचित महत्व नहीं दिया जाता।

स्वप्निल भारतीय
लखीमपुर खीरी, उ. प्र.

मैं आपकी शैक्षिक संदर्भ का नियमित पाठक हूं। मैंने अंक-34 अक्टूबर-नवंबर 2000 के 'ज़रा सिर तो खुजलाइए' में दिए गए सवाल 'दस दस सिक्कों की दस ढेरियां हैं.....' का उत्तर उसी समय प्रेषित किया था जिसमें मैंने तीन बार तौलकर नकली सिक्कों वाली ढेरी का पता लगाया था तथा पूर्ण

हल का विवरण आपके पास भेजा था।

अभी मुझे अंक-35 प्राप्त हुआ जिसमें डॉ. प्रदीप दीक्षित ने एक बार में तौलकर ही नकली सिक्कों की ढेरी का पता लगाया है।

मैं संपादक मण्डल के निर्णय तथा प्रदीप जी के हल से सहमत नहीं हूं; क्योंकि प्रश्न में लिखा है कि आपको एक तराजू दी गई है, आपको बताना है कि कम-से-कम कितनी बार तौलकर आप नकली ढेरी का पता लगा सकते हैं? इससे पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि हमारे पास मात्र एक तराजू है, न कि बाट। यदि बाटों की सहायता से ही तौलकर बताना था तो आपने यह सवाल में स्पष्ट क्यों नहीं किया?

इस पत्रिका का प्रशंसक एवं पाठक होने के नाते मैं इस त्रुटि को चुनौती देता हूं। या तो यह प्रश्न गलत है या फिर उत्तर। प्रदीप जी ने आसानी से 385 ग्राम वज़न तराजू के एक पलड़े में रख लिया और सिक्के दूसरे में। और तौलकर हल भेज दिया तथा संपादक मंडल ने उसे छाप दिया। प्रदीप जी के पास दी गई शर्तानुसार, बाट तो थे ही नहीं फिर 385 ग्राम वज़न तौला कैसे?

आपसे विनम्र निवेदन है कि कृपया मुझे इसका हल भेजें जिसमें उपरोक्त मामला स्पष्ट किया हुआ हो। यदि आप मेरी प्रार्थना पर गौर नहीं फरमाएंगे तो आज से इस पत्रिका का एक पाठक कम हो जाएगा।

सुरेन्द्र शर्मा (प्राथमिक शिक्षक)
गांव ढ़ाबढ़ाणी, भिवानी, हरियाणा

सुरेन्द्र जी का तर्क अपनी जगह वाजिब है। यदि सवाल के साथ बाट की बात की होती तो हमारे कई पाठक बिना बाटवाले तरीके से हल खोजने की शायद ही कोशिश करते। हालांकि कई पाठकों ने बिना बाटों का इस्तेमाल किए चार बार, पांच बार या छह बार में नकली ढेरी मालूम करने वाले जवाब भेजे हैं।

सुरेन्द्र जी द्वारा प्रेषित जवाब में उन्होंने कोशिश बढ़िया की लेकिन वो दूसरे चरण में गड़बड़ा गए।

खैर यह सवाल अभी भी पाठकों के लिए खुला है। वे सिर्फ तराजू की मदद से (बिना बाटों का इस्तेमाल किए) कम-से-कम बार में नकली सिक्कों की ढेरी पता कर सकते हैं। हम इसके सही जवाब भी प्रकाशित करेंगे। — *संपादक मंडल*